

## महाभारत में युद्ध और शांति की अवधारणा: भारतीय सामरिक चिंतन का दार्शनिक आधार

अनुभव सिंह

चौधरी महादेव प्रसाद महाविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

### सारांश

प्रस्तुत शोध-पत्र में महाभारत में निहित युद्ध और शांति की अवधारणाओं का दार्शनिक तथा सामरिक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है। महाभारत को केवल एक ऐतिहासिक या धार्मिक ग्रंथ न मानकर, इसे भारतीय सामरिक चिंतन के आधारभूत स्रोत के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि महाभारत में युद्ध को “धर्मयुद्ध” के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसका उद्देश्य न्याय की स्थापना और अधर्म का विनाश है। साथ ही, युद्ध को अंतिम विकल्प के रूप में स्वीकार किया गया है, जबकि शांति को सर्वोच्च आदर्श माना गया है। शोध में यह भी बताया गया है कि युद्ध के संचालन हेतु नैतिक नियम निर्धारित थे, जो इसे मर्यादित और मानवीय बनाते थे। श्रीकृष्ण के सामरिक दृष्टिकोण के माध्यम से कूटनीति, नैतिकता और शक्ति के संतुलन को समझाया गया है। पांडवों द्वारा बार-बार शांति प्रयास इस बात को प्रमाणित करते हैं कि संवाद और समझौता भारतीय परंपरा में प्राथमिक साधन रहे हैं। अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि महाभारत में युद्ध और शांति की अवधारणाएं केवल ऐतिहासिक घटनाएं नहीं, बल्कि एक व्यापक दार्शनिक ढांचा हैं, जो आधुनिक वैश्विक संदर्भ में भी प्रासंगिक हैं। यह भारतीय सामरिक चिंतन को नैतिकता और कर्तव्य पर आधारित एक संतुलित दृष्टिकोण प्रदान करता है।

**मुख्य शब्द:** धर्मयुद्ध, शांति, महाभारत, भारतीय सामरिक चिंतन, नैतिकता, कूटनीति।

### प्रस्तावना-

भारतीय लौकिक साहित्य में रामायण के पश्चात् महाभारत का ही स्थान है। यह कई दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह भारतीय साहित्य का आकार ग्रन्थ है इसमें चतुर्वर्ग के सभी विषय, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष, प्रतिपादित हैं। महाभारत में इस तथ्य का उल्लेख है।

धर्मं चार्थं च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

यदिहास्ति तदन्यत्र, यत्रेहास्ति न तत् क्वचित्।<sup>1</sup>

महाभारत भारतीय संस्कृति, दर्शन और राजनीति का एक ऐसा महान ग्रंथ है, जिसमें मानव जीवन के विविध आयामों का गहन और यथार्थपूर्ण चित्रण किया गया है। यह केवल एक महाकाव्य नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक और सामरिक चिंतन का एक व्यापक दार्शनिक ग्रंथ है। विशेष रूप से, इसमें युद्ध और शांति की अवधारणाएं अत्यंत सूक्ष्मता और संतुलन के साथ प्रस्तुत की गई हैं, जो भारतीय सामरिक चिंतन के मूल आधार को निर्मित करती हैं।

महाभारत में वर्णित कुरुक्षेत्र का युद्ध केवल राजसत्ता के लिए संघर्ष नहीं था, बल्कि यह धर्म और अधर्म के बीच का एक निर्णायक टकराव था। इस संदर्भ में महाभारत यह स्पष्ट करता है कि युद्ध को केवल हिंसा या विनाश के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए, बल्कि इसे न्याय और धर्म की स्थापना के एक माध्यम के रूप में समझा जाना चाहिए। महाभारत में युद्ध और शांति के संबंध को अत्यंत गहराई से व्याख्यायित किया गया है। एक ओर जहां युद्ध को आवश्यक परिस्थिति में स्वीकार किया गया है, वहीं दूसरी ओर शांति को सर्वोच्च आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इस संतुलन को समझने के लिए महाभारत का यह प्रसिद्ध कथन महत्वपूर्ण है—

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।

तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।<sup>2</sup>

महाभारत यह भी सिखाता है कि युद्ध को अंतिम विकल्प के रूप में ही अपनाया जाना चाहिए। पांडवों द्वारा बार-बार शांति स्थापित करने के प्रयास इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। इस संदर्भ में एक अन्य महत्वपूर्ण उद्धरण है—

“न हि शान्तेः परं सुखम्”

महाभारत के विभिन्न पर्वों-विशेषतः उद्योग पर्व, भीष्म पर्व और शांति पर्व में युद्ध और शांति के सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इन पर्वों में यह स्पष्ट किया गया है कि एक आदर्श शासक को शक्ति और नैतिकता दोनों का संतुलन बनाए रखना चाहिए। महाभारत का दार्शनिक दृष्टिकोण यह भी दर्शाता है कि युद्ध केवल बाह्य संघर्ष नहीं, बल्कि आंतरिक नैतिक संघर्ष का भी प्रतीक है। अर्जुन का मोह और श्रीकृष्ण का उपदेश इस बात को स्पष्ट करता है कि सही और गलत के बीच निर्णय लेना ही वास्तविक संघर्ष है।

अतः महाभारत में युद्ध और शांति की अवधारणाएं केवल ऐतिहासिक घटनाएं नहीं हैं, बल्कि वे भारतीय सामरिक और दार्शनिक चिंतन की आधारशिला हैं। यह ग्रंथ हमें यह सिखाता है कि शक्ति का प्रयोग केवल न्याय और धर्म की स्थापना के लिए होना चाहिए, और शांति ही अंततः मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है।<sup>3</sup>

#### शोध का उद्देश्य-

प्रस्तुत अध्ययन का सामान्य उद्देश्य “महाभारत में युद्ध और शांति की अवधारणा: भारतीय सामरिक चिंतन का दार्शनिक आधार” अध्ययन का पता लगाना था। प्रस्तुत शोध के अन्तर्गत निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है-

1. महाभारत में युद्ध और शांति की अवधारणाओं का अध्ययन करना।
2. महाभारत का सामान्य परिचय का अध्ययन करना।
3. भारतीय सामरिक चिंतन के दार्शनिक आधार की पहचान करना।
4. शांति की अवधारणा और उसका महत्व का अध्ययन करना।

#### शोध प्रविधि-

इस शोध में द्वितीयक स्रोतों पर आधारित गुणात्मक पद्धति का उपयोग किया गया है। अध्ययन हेतु प्रमुख सामग्री *महाभारत* के विभिन्न पर्वों-विशेषतः शांति पर्व, उद्योग पर्व और भीष्म पर्व तथा *श्रीमद्भगवद्गीता* से संकलित की गई है। इसके अतिरिक्त भारतीय सामरिक चिंतन और दर्शन से संबंधित प्रामाणिक पुस्तकों, शोध-पत्रों, समीक्षात्मक लेखों तथा विद्वानों के विश्लेषणों का भी उपयोग किया गया है। डेटा संग्रहण के लिए पुस्तकालयों, ई-संसाधनों (जैसे जेस्टोर, गूगल स्कॉलर) और विश्वविद्यालयीय शोध-भंडारों का सहारा लिया गया। संकलित सामग्री का विषयानुसार वर्गीकरण कर तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति से परीक्षण किया गया, जिससे युद्ध और शांति की अवधारणाओं के दार्शनिक आधार को स्पष्ट किया जा सके। इस अध्ययन में व्याख्यात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए ग्रंथों के मूल सन्दर्भों के साथ समकालीन परिप्रेक्ष्य में उनका पुनर्पाठ किया गया है, ताकि भारतीय सामरिक चिंतन की प्रासंगिकता को समग्र रूप में समझा जा सके।

#### अध्ययन का महत्व-

यह अध्ययन महाभारत में निहित युद्ध और शांति की अवधारणाओं को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह ग्रंथ केवल धार्मिक आख्यान नहीं, बल्कि भारतीय सामरिक और दार्शनिक चिंतन का आधार भी है। महाभारत के माध्यम से यह

स्पष्ट होता है कि भारतीय परंपरा में युद्ध को केवल शक्ति प्रदर्शन नहीं, बल्कि धर्म और न्याय की स्थापना के साधन के रूप में देखा गया है। इस अध्ययन का महत्व इस बात में भी निहित है कि यह प्राचीन भारतीय विचारों को आधुनिक वैश्विक परिप्रेक्ष्य से जोड़ता है। वर्तमान समय में बढ़ते संघर्षों और अंतरराष्ट्रीय तनावों के बीच महाभारत का “युद्ध अंतिम विकल्प” और “शांति सर्वोपरि” का सिद्धांत अत्यंत प्रासंगिक है। इसके अतिरिक्त, यह शोध भारतीय सामरिक चिंतन की विशिष्टता को उजागर करता है, जो नैतिकता, कर्तव्य और संतुलन पर आधारित है। इस प्रकार, यह अध्ययन न केवल शैक्षणिक दृष्टि से उपयोगी है, बल्कि समकालीन नीति-निर्माण और कूटनीति के लिए भी मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है।

### महाभारत का सामान्य परिचय-

विश्व-वाङ्मय में महाभारत को महाभारत 'महत्त्वाद् भारवत्त्वाच्च महाभारतमुच्यते' अर्थात् इसके महत्त्व और आकार-गौरव के कारण ही कहा जाता है। महाभारत केवल भारतवर्ष का ही नहीं अपितु विश्व-वाङ्मय का सबसे विशाल और अद्वितीय ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भारतवर्ष की आर्ष-काव्य-परम्परा का ग्रन्थ है।<sup>4</sup> महाभारत प्रमुख उत्तम इतिहास - ग्रन्थ है।

इतिहासोत्तमे यस्मिन्नर्पिता बुद्धिरुत्तमा ।<sup>5</sup>

हृदानामुदधिः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ।

यथैतानीतिहासानां तथा भारतमुच्यते ॥<sup>6</sup>

जिसे इतिहास की परम्परा के आधार पर पुराकल्प-इतिहास-ग्रन्थ की श्रेणी में रखा जाता है। इतिहास ग्रन्थ दो प्रकार के होते हैं- पुराकल्प और परिक्रिया। पुराकल्प इतिहास ग्रन्थ में नायकों की बहुलता होती है इसके विपरीत परिक्रिया इतिहास ग्रन्थ में केवल एक ही नायक होता है।

जय नामेतिहासोऽयम् ।<sup>7</sup>

परिक्रिया पुराकल्पो इतिहासगतिद्विधा ।

स्यादेकनायका पूर्वा द्वितीया बहुनायकाः ॥

महाभारत ग्रन्थ के प्रणेता के रूप में महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास को विश्व-प्रसिद्धि प्राप्त है। समय-निर्धारण की दृष्टि से देखा जाये तो वर्तमान महाभारत ग्रन्थ का निर्माण ईसा पूर्व पञ्चम् या षष्ठ शताब्दी माना जाता है। विषय-व्यापकता, आकार-विशालता, भाव-गम्भीरता और विश्व-लोकप्रियता के कारण इस ग्रन्थ के सन्दर्भ में यह विश्व ख्याति है कि जो कुछ महाभारत में है वही सब कुछ भारतवर्ष के साथ-साथ अन्य राष्ट्रों में भी है और जो कुछ महाभारत में नहीं है वह भारतवर्ष के साथ-साथ अन्य राष्ट्रों में भी नहीं है।

धर्मं चार्थं च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित् ॥<sup>8</sup>

इस परमपूजित उपजीव्य-महाकाव्य-ग्रन्थ का विकास अचानक नहीं हुआ अपितु लम्बे समय के पश्चात् हुआ। यह ग्रन्थ मूलतः जय, भारत और महाभारत इन तीन स्वरूपों से होता हुआ अपने पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त हुआ है।

उवाच स महातेजा ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ।

कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परमपूजितम् ॥<sup>9</sup>

महाभारत के प्रथम स्वरूप 'जय' के विषय में ऐसा माना जाता है कि कौरवों पर पाण्डवों की विजय के कारण इस काव्य का मूलस्वरूप 'जय' हुआ और महर्षि वेदव्यास ने स्वयं भी इसका नाम जय ही स्वीकार किया था, 'जय नामेतिहासोऽयम्'। इस जय की अवस्था में महाभारत में 8800 श्लोक विद्यमान थे और इसके वक्ता महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास तथा श्रोता वैशम्पायन और शुकदेव थे। इस 'जय' काव्य के मंगलाचरण में नारायण और सरस्वती आदि की स्तुति की गयी थी।

अष्टौ श्लोकसहस्राणि अष्टौ श्लोकशतानि च।

अहं वेद्मि शुको वेत्ति सञ्जयो वेत्ति वा न वा ॥<sup>10</sup>

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥<sup>11</sup>

महर्षि वेदव्यास ने इस ग्रन्थ की रचना मन में ही कर ली थी तत्पश्चात् उन्होंने इसे लिपिबद्ध करने की इच्छा से ब्रह्मा जी से निवेदन किया कि हे भगवन् ! मैंने अनन्त ज्ञान-कोष महाभारत की रचना की है और इसे लिपिबद्ध करने के लिए किसी योग्य लेखक की आवश्यकता है। तब संसार के सृजनकर्ता ब्रह्मा जी ने उपयुक्त लेखक के रूप में गणेश जी का नाम सुझाया। महर्षि वेदव्यास ने गणेश जी से अपनी बात कही। गणेश जी ने सशर्त स्वीकार किया कि उनकी लेखनी किसी भी कारण से विराम न ले। महर्षि वेदव्यास ने कहा कि मुझे आपकी शर्त स्वीकार है परन्तु आप मेरे द्वारा रचित प्रत्येक श्लोक को उसके अर्थ को समझने के पश्चात् ही निबद्ध करेंगे। गणेश जी ने इसे सहर्ष स्वीकार किया, इस तरह महर्षि वेदव्यास ने 8800 श्लोकों को मुखारविन्द से कहा तथा गणेश जी ने अपने कर कमलों से लेखनीबद्ध किया।

परं न लेखकः कश्चिदेतस्य भुवि विद्यते ।

काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यतां मुने।

लेखको भारतस्यास्य भव त्वं गणनायक।

मयैव प्रोच्यमानस्य मनसा कल्पितस्य च ॥

श्रुत्वैतत् प्राह विघ्नेशो यदि मे लेखनी क्षणम् ।

लिखतो नावतिष्ठेत् तदा स्यां लेखको ह्यहम् ॥

व्यासोऽप्युवाच तं देवमबुद्ध्वा मा लिख क्वचित् ।

ओमित्युक्त्वा गणेशोऽपि बभूव किल लेखकः ॥<sup>12</sup>

महाभारत के द्वितीय स्वरूप 'भारत' के विषय में मान्यता है कि कौरव और पाण्डव दोनों ही भरतवंशी थे इसलिए आरम्भ में ही इस ग्रन्थ का नाम भारत रखा गया। यह भारत नाम का महाभारत का द्वितीय स्वरूप आख्यानों से रहित था। इसमें 24,000 श्लोक थे। चौबीस हजार श्लोक होने के कारण इसका अपर नाम चतुर्विंशति-साहस्री-संहिता भी प्रचलित हो गया।

इदं शतसहस्रं तु लोकानां पुण्यकर्मणाम् ।

उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारतमुत्तमम् ॥

चतुर्विंशतिसाहस्रीं चक्रे भारतसंहिताम् ।

उपाख्यानैर्विना तावद् भारतं प्रोच्यते बुधैः ॥<sup>13</sup>

इस भारत के वक्ता वैशम्पायन और श्रोता जनमेजय, सौति और शौनक आदि प्रमुख थे जिसे परीक्षित के पुत्र जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर सुनाया गया। इस नागयज्ञ के अवसर पर जनमेजय आदि ने जिज्ञासाओं को व्यक्त किया और वैशम्पायन ने उन सभी जिज्ञासाओं का विस्तारपूर्वक समाधान किया और अन्ततः उसे भारत के मूलस्वरूप में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार भारत का स्वरूप विस्तृत हुआ।

भारत के पश्चात् महाभारत का तृतीय स्वरूप 'महाभारत' नाम से प्रसिद्ध हुआ। इसमें श्लोकों की संख्या 100,000 हो गयी। जिसके कारण इसे शतसाहस्रीसंहिता नाम से भी जाना जाता है।

शिष्यो व्यासस्य धर्मात्मा सर्ववेदविदां वरः।

एकं शतसहस्रं तु मयोक्तं वै निबोधत ॥<sup>14</sup>

महाभारत के तृतीय स्वरूप के वक्ता सौति (सुत जी) और श्रोता शौनक आदि ऋषि तथा अन्य सभी मनुष्य थे। इसे शौनक आदि द्वारा आयोजित द्वादशवर्षीय यज्ञ के अवसर पर सुनाया गया। इस अवसर पर शौनक आदि ऋषियों ने अनेकों प्रश्न किये और सौति (सुत जी) ने उनका समाधान किया, जिन्हें महाभारत के मूलस्वरूप में सम्मिलित कर लिया गया। बाद में हरिवंशपुराण को भी इसमें जोड़ा गया, इस प्रकार महाभारत में श्लोकों की संख्या एक लाख तक हो गयी। इसीलिए इसे 'शतसाहस्री संहिता', पंचम वेद की मान्यता के आधार पर 'कार्ष्णवेद' और ब्रह्मा के वचन के अनुसार 'काव्य' आदि अपर नामों से भी जाना जाता है।

कार्ष्णवेदमिमं विद्वांस्त्रावयित्वाथमश्रुते।<sup>15</sup>

जन्मप्रभृति सत्यां ते वेद्मि गां ब्रह्मवादिनीम् ।

त्वया च काव्यमित्युक्तं तस्मात् काव्यं भविष्यति ॥<sup>16</sup>

महाभारत की प्रबन्ध-योजना में 18 संख्या का विशिष्ट योग है। महाभारत में कुल 18 पर्व हैं, महाभारत का युद्ध कुल 18 दिनों तक चला, महाभारत के प्राणस्वरूप ग्रन्थ गीता में कुल 18 अध्याय हैं।<sup>17</sup>

### महाभारत में युद्ध की अवधारणा-

महाभारत में युद्ध की अवधारणा एक गहन दार्शनिक और नैतिक परिप्रेक्ष्य में विकसित हुई है, जिसमें युद्ध को केवल भौतिक संघर्ष नहीं, बल्कि “धर्मयुद्ध” के रूप में देखा गया है। इसका उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि धर्म की स्थापना और अधर्म का नाश है। महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि कुरुक्षेत्र का युद्ध आकस्मिक नहीं था, बल्कि यह दीर्घकालीन अन्याय और नैतिक पतन का परिणाम था। पांडवों ने युद्ध से पूर्व शांति के अनेक प्रयास किए, जो इस सिद्धांत को पुष्ट करता है कि युद्ध अंतिम विकल्प होना चाहिए। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण उद्धरण मिलता है—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥<sup>18</sup>

महाभारत में युद्ध के संचालन हेतु स्पष्ट नियम निर्धारित किए गए थे, जो इसे नैतिक मर्यादाओं से बांधते हैं। उदाहरणतः— निहत्थे पर आक्रमण न करना, समान योद्धाओं के बीच युद्ध होना, तथा सूर्यास्त के बाद युद्ध न करना। महाभारत (भीष्म पर्व) में उल्लेख मिलता है—

न हन्याच्छरणागतं न निरायुधं न चापि भीतं न पराङ्मुखम्।

हालांकि, महाभारत यह भी दिखाता है कि इन नियमों का उल्लंघन भी हुआ, जैसे अभिमन्यु वध और कर्ण की मृत्यु। इससे यह सिद्ध होता है कि युद्ध में नैतिकता बनाए रखना कठिन होता है और इसके परिणाम विनाशकारी होते हैं। युद्ध के परिणामों पर विचार करते हुए, महाभारत के शांति पर्व में युधिष्ठिर कहते हैं—

"विजयोऽपि दुःखाय"

अतः महाभारत में युद्ध की अवधारणा यह स्पष्ट करती है कि युद्ध एक आवश्यक किन्तु नियंत्रित साधन है, जिसे केवल धर्म और न्याय की रक्षा के लिए ही अपनाया जाना चाहिए। यह भारतीय सामरिक चिंतन में नैतिकता और कर्तव्य के संतुलन को स्थापित करता है।<sup>19</sup>

### श्रीकृष्ण का सामरिक दृष्टिकोण-

महाभारत में श्रीकृष्ण का सामरिक दृष्टिकोण युद्ध और शांति के संतुलित तथा व्यावहारिक स्वरूप को प्रस्तुत करता है। वे न केवल एक दार्शनिक मार्गदर्शक हैं, बल्कि एक कुशल कूटनीतिज्ञ और रणनीतिकार भी हैं, जिनका उद्देश्य धर्म की स्थापना और न्याय की पुनर्स्थापना है। महाभारत में वर्णित है कि श्रीकृष्ण ने युद्ध से पूर्व शांति स्थापित करने का पूर्ण प्रयास किया। वे शांति-दूत के रूप में हस्तिनापुर गए और पांडवों के लिए केवल "पांच गांव" की मांग रखी। यह उनके सामरिक दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण पक्ष है कि वे युद्ध को अंतिम विकल्प मानते थे। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण उद्धरण है—

शममेव परं मन्ये न तु मोक्षाद्भवेच्छमः।

आरम्भे पारमेष्ठ्यं तु न प्राप्यमिति मे मतिः॥<sup>20</sup>

किन्तु जब सभी कूटनीतिक प्रयास विफल हो गए, तब श्रीकृष्ण ने धर्म की रक्षा हेतु युद्ध का समर्थन किया। भगवद्गीता में उन्होंने अर्जुन को कर्तव्य-पालन और धर्मयुद्ध के लिए प्रेरित करते हुए कहा—

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।<sup>21</sup>

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि अपने धर्म का पालन करना ही सर्वोच्च कर्तव्य है, चाहे उसके लिए युद्ध ही क्यों न करना पड़े। श्रीकृष्ण का सामरिक दृष्टिकोण 'नैतिक यथार्थवाद' पर आधारित है, जिसमें आदर्श और व्यवहार दोनों का समन्वय है। वे जानते थे कि केवल आदर्शों से शांति संभव नहीं है, बल्कि आवश्यकता पड़ने पर शक्ति का प्रयोग भी अनिवार्य हो सकता है। इस प्रकार, महाभारत में श्रीकृष्ण का दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि एक सफल सामरिक नीति में कूटनीति, नैतिकता और शक्ति—तीनों का संतुलित उपयोग आवश्यक है।<sup>22</sup>

### शांति की अवधारणा और उसका महत्व-

महाभारत में शांति की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण और उच्चतम आदर्श के रूप में प्रस्तुत की गई है। यह केवल युद्ध की अनुपस्थिति नहीं, बल्कि न्याय, संतुलन और धर्म की स्थापना की स्थिति है। महाभारत यह स्पष्ट करता है कि शांति ही मानव जीवन और समाज की स्थिरता का आधार है, जबकि युद्ध केवल एक अंतिम उपाय के रूप में स्वीकार्य है।

महाभारत में यह वर्णित है कि पांडवों ने युद्ध से पूर्व अनेक बार शांति स्थापित करने का प्रयास किया। श्रीकृष्ण का शांति-दूत के रूप में हस्तिनापुर जाना इस बात का प्रमाण है कि कूटनीति और संवाद को प्राथमिकता दी गई थी।<sup>23</sup>

“न हि शान्तेः परं सुखम्”

अर्थात् शांति से बढ़कर कोई सुख नहीं है। यह उद्धरण महाभारत में शांति के सर्वोच्च मूल्य को स्पष्ट करता है।

महाभारत में शांति को धर्म के साथ जोड़ा गया है। यदि समाज में न्याय और धर्म की स्थापना होती है, तभी वास्तविक शांति संभव है। इसीलिए केवल बाहरी शांति पर्याप्त नहीं मानी गई, बल्कि आंतरिक और नैतिक संतुलन को भी आवश्यक माना गया है। महाभारत के शांति पर्व में भीष्म पितामह युधिष्ठिर को उपदेश देते हुए कहते हैं—

“शमो धर्मस्य मूलम्”

इसके अतिरिक्त, महाभारत यह भी सिखाता है कि स्थायी शांति केवल न्यायपूर्ण व्यवस्था से ही प्राप्त हो सकती है। यदि अन्याय और अधर्म बना रहता है, तो शांति अस्थायी और असंतुलित होती है। इसीलिए, जब शांति के सभी प्रयास विफल हो जाते हैं, तब धर्म की रक्षा हेतु युद्ध को स्वीकार किया जाता है। महाभारत में शांति का एक महत्वपूर्ण आयाम ‘क्षमा’ और ‘सहिष्णुता’ भी है। ये गुण समाज में सौहार्द और स्थिरता बनाए रखने में सहायक होते हैं। परंतु जब इनका दुरुपयोग होकर अन्याय को बढ़ावा मिलता है, तब केवल शांति बनाए रखना उचित नहीं माना गया। अतः महाभारत में शांति की अवधारणा बहुआयामी है—यह नैतिक, सामाजिक और राजनीतिक सभी स्तरों पर महत्वपूर्ण है। यह स्पष्ट करता है कि शांति केवल निष्क्रिय स्थिति नहीं, बल्कि सक्रिय रूप से न्याय और धर्म की स्थापना का परिणाम है।<sup>24</sup>

#### भारतीय सामरिक चिंतन का दार्शनिक आधार-

महाभारत में वर्णित युद्ध और शांति की अवधारणाएं भारतीय सामरिक चिंतन के गहन दार्शनिक आधार को निर्मित करती हैं। यह चिंतन केवल सैन्य शक्ति या विजय की आकांक्षा पर आधारित नहीं है, बल्कि धर्म, न्याय, नैतिकता और कर्तव्य जैसे मूलभूत मूल्यों से संचालित होता है। इस दृष्टि से महाभारत भारतीय रणनीतिक परंपरा को एक विशिष्ट और मानवीय स्वरूप प्रदान करता है।

भारतीय दृष्टिकोण में युद्ध को केवल शक्ति-प्रदर्शन के रूप में नहीं देखा गया है, बल्कि यह धर्म और न्याय की रक्षा का एक माध्यम है। जब समाज में अधर्म और अन्याय का प्रबल प्रभाव हो जाता है, तब उसे समाप्त करने के लिए युद्ध आवश्यक हो सकता है। परंतु यह निर्णय मनमाना नहीं होता, बल्कि धर्म के सिद्धांतों के आधार पर लिया जाता है। इस प्रकार, युद्ध और शांति दोनों का निर्धारण नैतिकता और कर्तव्य की कसौटी पर होता है।

महाभारत यह स्पष्ट करता है कि किसी भी राजनीतिक या सामरिक निर्णय का आधार धर्म होना चाहिए। शासक का कर्तव्य है कि वह धर्म की रक्षा करे और समाज में न्याय स्थापित करे। युद्ध के दौरान भी मर्यादा और नैतिक नियमों का पालन अनिवार्य माना गया है। निहत्थे, शरणागत या निर्दोष व्यक्ति पर आक्रमण न करना इस बात का प्रमाण है कि भारतीय युद्धनीति मानवीय मूल्यों से जुड़ी हुई है। महाभारत में युद्ध को अंतिम विकल्प के रूप में प्रस्तुत किया गया है। संवाद, कूटनीति और समझौते को पहले अपनाया जाता है। यह दृष्टिकोण इस विचार को बल देता है कि स्थायी समाधान शांति के माध्यम से ही संभव है, न कि केवल युद्ध के द्वारा। भारतीय सामरिक चिंतन में शक्ति और नैतिकता के बीच संतुलन आवश्यक है। केवल शक्ति पर आधारित नीति विनाशकारी हो सकती है, जबकि केवल आदर्शों पर आधारित नीति व्यावहारिक नहीं होती। अतः इन दोनों के बीच संतुलन स्थापित करना आवश्यक है।<sup>25</sup>

यह दृष्टिकोण पश्चिमी यथार्थवाद से भिन्न है, जहां प्रायः शक्ति और राष्ट्रीय स्वार्थ को सर्वोपरि माना जाता है। इसके विपरीत, भारतीय दृष्टिकोण नैतिकता, धर्म और न्याय के साथ शक्ति के संतुलित उपयोग पर बल देता है। इस प्रकार, महाभारत भारतीय सामरिक चिंतन को एक उच्च नैतिक और दार्शनिक आधार प्रदान करता है, जो आज भी प्रासंगिक और मार्गदर्शक है।<sup>26</sup>

निष्कर्ष-

महाभारत में युद्ध और शांति की अवधारणाएं गहन दार्शनिक आधार पर निर्मित हैं, जिनका केंद्र बिंदु “धर्म” है। युद्ध को अनिवार्य परिस्थिति में अपनाया जाने वाला अंतिम उपाय माना गया है, जबकि शांति को सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। महाभारत यह सिखाता है कि शक्ति का प्रयोग केवल न्याय और धर्म की स्थापना के लिए होना चाहिए, न कि स्वार्थ की पूर्ति के लिए। श्रीकृष्ण का दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि सफल सामरिक नीति में कूटनीति, नैतिकता और शक्ति का संतुलन आवश्यक है। साथ ही, यह ग्रंथ यह भी संकेत देता है कि युद्ध के परिणाम सदैव विनाशकारी होते हैं, इसलिए शांति स्थापना के प्रयास प्राथमिक होने चाहिए। अतः महाभारत भारतीय सामरिक चिंतन को एक नैतिक, संतुलित और व्यावहारिक दिशा प्रदान करता है, जो आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. महाभारत आदिपर्व-62/53।
2. मनुस्मृति 8/15।
3. पूनम यादव, (2017), “महाभारत के शान्तिपर्व में अन्तर्निहित आचारशास्त्रीय अवधारणा”, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी, पृष्ठ: 1-7।
4. नवलकिशोर, (1984), “श्रीमद् भागवत”, प्रेस लखनऊ, पृष्ठ: 660।
5. (महाभारत आदिपर्व 2/39)
6. (काव्यमीमांसा अध्याय - 2)
7. (महाभारत- आदिपर्व 62/20)
8. (महाभारत आदिपर्व 62/53)
9. (महाभारत आदिपर्व 1/61)
10. (महाभारत आदिपर्व 1/81)
11. (महाभारत- आदिपर्व 1/1)
12. (आदिपर्व में 1.54-83)
13. (आदिपर्व 1.101-102)
14. (आदिपर्व 1.109)
15. (आदिपर्व 62/18)
16. (आदिपर्व 1.72)
17. पूर्णप्रज्ञ दास, (2014), “महाभारत एक प्रमाणिक संस्कार”, ट्रैवेलिंग संकीर्तन पार्टी, पृष्ठ: 1162।
18. (भगवद् गीता 4/7)
19. निधि यादव, (2017), “महर्षि व्यासकृत महाभारत की महत्ता”, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी, पृष्ठ: 792-795।
20. (भगवद् गीता 14, श्लोक 5)
21. (भगवद्गीता 3/35)

22. एन आर गोपाल गोपाल, (2023), “महाभारत में कृष्ण की निर्णायक भूमिका: एक दिव्य उत्प्रेरक”, द क्रिएटिव लॉन्चर, पृष्ठ: 12-23।
23. फ्रिट्ज़गेराल्ड, जे. एल., (2004), “महाभारत, खंड 7 (शांति पर्व)”, शिकागो विश्वविद्यालय प्रेस, पृष्ठ: 848।
24. अंश, (2016), “महाभारत के शांति पर्व में राजधर्म”, स्क्रिप्ट, पृष्ठ: 1-14।
25. विवेक चड्ढा, (2023), “हाउ धर्म शॉप्स स्ट्रेटेजिक थॉट ऑन वॉर इन द महाभारत”, मनोहर पर्रिकर रक्षा अध्ययन एवं विश्लेषण संस्थान, पृष्ठ” 22-54।
26. शर्मा, आर. एस. (1999), “अन्सिएंट इंडियन पोलिटिकल थॉट एंड इंस्टीट्यूशन्स”, ओरिएंट लॉन्गमैन, पृष्ठ” 220।